Q1. प्रत्यायोजित विधायन से आद क्या समझते है? प्रत्यायोजित विधान पर ससदीय नियंत्रण की विवेचना कीजिये।

'विधायन' का शाब्दिक अर्थ विधि का निर्माण से है। प्रत्यायोजित विधायन से तात्पर्य उस विधि निर्माण से माना जाता है जिसमें विधायिका स्वयं कानून निर्माण न करके अपना अधिकार अन्य किसी संस्था अथवा प्राधिकारी (Authority) को सौंप देती है । विधिशास्त्री **सामण्ड** ने प्रत्यायोजित विधायन की परिभाषा देते हुए कहा, "वह जोकि प्रभुसत्ताधारी के अलावा किसी अन्य सत्ता से अपना कार्य संचालन कराती है और अपने अस्तित्व को अनवरत रूप से, औचित्य के किसी श्रेष्ठ अथवा सम्प्रभु पर आधारित करती है। "

इंग्लैण्ड में मन्त्रियों की शक्ति के सम्बन्ध में नियुक्त समिति ने यह संकेत किया था कि प्रत्यायोजित विधायन दो अर्थों में प्रयोग किया जाता है—

(1) जब विधानमण्डल अपनी विधायी शक्ति को कार्यकारिणी को सौंप देता है, तो उसे प्रत्यायोजित विधायन कहते हैं।

(2) जब कार्यकारिणी उस सौंपे गये कानून बनाने के अधिकार के प्रयोग में नियम, विनियम, आदेश, निर्देश आदि को जारी करती है, उसे भी प्रत्यायोजित विधायन कहते हैं ।

इस सम्बन्ध में **ऑस्टिन** ने अपनी पुस्तक विधिशास्त्र में कहा है कि "बिना विधायी क्रिया के कोई विधि नहीं हो सकती " अधिक उपयुक्त लगती है।

सामण्ड ने अपनी परिभाषा में विधायन को दो प्रकार का माना है— उच्चतम एवं गौण । उच्चतम विधायन से तात्पर्य राज्य की सर्वोच्च सत्ता द्वारा निर्मित विधि से होता है जिसे कोई चुनौती नहीं दे सकता है। गौण विधायन से तात्पर्य, किसी सम्प्रभु के अधीनस्थ प्राधिकारी से लगाया जाता है, परिणामस्वरूप वह अपने अस्तित्व की मान्यता के लिये उच्चतम या सर्वोच्च प्राधिकारी पर निर्भर करता है।

सामान्य अर्थ में प्रत्यायोजित विधायन उस विधान को कहते हैं जो विधानमण्डल के अतिरिक्त किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा बनाया जाता है। भारत में केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार तथा केन्द्रीय प्राधिकारी तथा अन्य प्रशासनिक निकायों को इस प्रकार की शक्ति प्रदान की गयी है कि वे विधानमण्डलों के द्वारा बनाये गये अधिनियमों के उद्देश्यों को पूरा करने के लिये तथा उन अधिनियमों की रिक्तियों को पूरा करने के लिये नियम या विनियम बनायें।

प्रत्यायोजित विधायन पर संसदीय नियन्त्रण (Parliamentary Control on Delegated Legislation) – प्रत्यायोजित विधायन पर संसदीय नियन्त्रण होता है। संसदीय नियन्त्रण से तात्पर्य विधायिका द्वारा नियन्त्रण से है। भारत में प्रत्यायोजित विधायन पर संसदीय नियन्त्रण की जो पद्धति अपनायी गयी है वह इंग्लैण्ड की पद्धति पर आधारित है। 1950 ई. में डॉ. अम्बेडकर ने सदन को यह सुझाव दिया कि इंग्लैण्ड की अस्थायी समिति के आधार पर जो वहाँ की लोकसभा नियुक्त की गयी है, भारत में भी लोकसभा की एक स्थायी समिति बनायी जाए जो इस बात का परीक्षण करेगी में कि, "क्या प्रत्यायोजित विधायन में संसद के मूल का अतिरेक कर दिया गया है अथवा उससे विचलन किया गया है अथवा उसके मूलभूत सिद्धान्त को प्रभावित किया गया है।" इसके अनुसार, 1 दिसम्बर, 1953 में लोकसभा की एक समिति बनायी गयी जिसे लोकसभा की प्रत्यायोजित विधायन पर समिति का नाम दिया गया। यह समिति किसी प्रशासनिक निकाय के द्वारा बनाये गए नियम, परिनियम, आदेश, उपनियम, उपविधियों आदि का परीक्षण करती है। समिति निम्नलिखित बातों का भी परीक्षण करती है -

(1) क्या प्रत्यायोजित विधायन संविधान में दिये गये सामान्य उद्देश्यों के अनुरूप है अथवा उस अधिनियम के अनुरूप है जिसके अनुसरण में यह बनाया गया है ?

(2) क्या उसमें कोई ऐसा नियम अन्तर्विष्ट किया गया है जिसको अधिक उचित रूप में संसद के एक अधिनियम द्वारा संव्यवहार किया जाना चाहिए था ?

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

(3) क्या वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित करता है ?
(4) क्या उसमें किसी कर का आरोपित किया जाना अन्तर्विष्ट है ?
(5) क्या वह किसी उपबन्ध को भूतलक्षी प्रभाव प्रदान करता है जिसके विषय में संविधान अथवा सम्वन्धित अधिनियम में स्पष्ट रूप से कोई ऐसी शक्ति प्रदान नहीं की गयी हैं ?
(6) क्या ऐसा प्रतीत होता है कि उसके प्रकाशन अथवा संसद के समक्ष प्रस्तुत किये जाने में अनुचित विलम्ब हुआ है?
(7) क्या किसी कारण उसके प्रारूप अथवा प्रयोजन को किसी स्पष्टीकरण की आव श्यकता है ?
(8) क्या यह प्रतीत होता है कि संविधान अथवा सम्बन्धित अधिनियम द्वारा जिनके अनुसरण में वह बनाया गया है, प्रदान की गयी शक्तियों पर कोई असामान्य अथवा अप्रत्याशित उपयोग किया गया है ?
(9) क्या उससे भारत की संचित विधि अथवा उसके राजस्व में कोई व्यय अन्तर्ग्रस्त है ?

इस समिति ने अपनी प्रथम रिपोर्ट में कुछ संस्तुतियाँ प्रस्तुत कीं जो 1955 ई. की तीसरी रिपोर्ट में कुछ सीमा तक परिवर्तित कर दी गयी हैं। इसकी मुख्य संस्तुतियाँ निम्नलिखित प्रकार की थीं-
(1) भविष्य में जो भी ऐसे अधिनियम पास किये जायेंगे जिसमें नियम, विनियम आदि बनाने के उपबन्ध प्रदान किये हैं, उन्हें यथाशीघ्र ही संसद के समक्ष प्रस्तुत किये जायेंगे।

(2) इस प्रकार के नियम, विनियम प्रकाशित होने की तिथि से 30 दिन पूर्व सामान्य रूप से संसद के समक्ष प्रस्तुत किये जायेंगे, जब तक कि वह अन्यथा न उपबन्धित हो कि प्रकाशन के पूर्व संसद के समक्ष उसका प्रस्तुत किया जाना समीचीन नहीं होगा।

(3) भविष्य में जो भी अधिनियम प्रत्यायोजित विधायन को अन्तर्विष्ट किये जाने के लिये पास किये जायेंगे, उनमें यह स्पष्ट उपबन्ध किया जायेगा कि उसके अधीन जो भी नियम-विनियम बनाये जायेंगे वे सदन के द्वारा उसकी इच्छानुसार संशोधित किये जा सकेंगे।

सदन के समक्ष प्रस्तुत किया गया - प्रत्यायोजित विधायन के संसदात्मक नियन्त्रण का दूसरा तरीका यह है कि प्रत्यायोजित विधायन को संसद के सदन के समक्ष रखा जाए। प्रस्तुत किये जाने के अनेक तरीके अपनाये गए हैं जिसमें प्रत्येक तरीका संसद को एक भिन्न प्रकार का नियन्त्रण अधिकार प्रदान करता है। कार्यकारिणी द्वारा निर्मित किये गए कानून का संसद के सम्मुख प्रस्तुत किया जाना मूल अधिनियम के अनुसार अत्यावश्यक है। संसदीय प्रक्रियाएँ निम्नलिखित हैं—

(1) सदन के समक्ष प्रस्तुत करना किसी और नियन्त्रण के प्रावधान के बिना।

(2) प्रत्यायोजित विधान को लागू किये जाने की संक्रिया को आस्थगित करके प्रस्तुत किया जाना।

(3) नियमों को यथाशीघ्र प्रस्तुत किये जाने की व्यवस्था जोकि संसद द्वारा निरस्त किया जा सके।

(4) प्ररूप नियमों को सदन के समक्ष प्रस्तुत करना इस शर्त के साथ कि उसमें कोई आगे कार्यवाही नहीं होगी।

(5) प्ररूप नियमों को प्रस्तुत करना तथा यह अपेक्षा करना कि उसके सम्बन्ध में संसद सकारात्मक प्रस्ताव पास करे।

(6) नियमों को आस्थगित संक्रिया के साथ प्रस्तुत किया जाना इस उद्देश्य से कि जब तक कि वे संसद द्वारा सकारात्मक प्रस्ताव से अनुमोदित नहीं किये जाते लागू नहीं किये जायेंगे।

सदन के समक्ष प्रस्तुत न किये जाने के परिणाम- सदन के समक्ष प्रस्तुत नहीं किये जाने के निम्नलिखित परिणाम होंगे सदन में प्रस्तुत किये जाने के प्रावधान आज्ञापक हैं। इसलिए अधिनियम की धारा 3(5) के तहत बनाया गया आदेश नॉन फैरस मैटल

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW

कण्ट्रोल आर्डर, 1958 की धारा 4 को अप्रभावी घोषित कर दिया गया, क्योंकि संसद के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था। नरेन्द्र कुमार बनाम भारत संघ, **A.I.R. 1960, S.C. 430 तथा एटलस इण्डस्ट्रीज लि. बनाम हरियाणा राज्य।**

Q2. अधिकारिता के संबंध में उपधारणाओं की व्याख्या कीजिए।

न्यायालय की स्थापित अधिकारिता को वंचित करने, नयी अधिकारिता की सृष्टि करने तथा वर्तमान अधिकारिता को विस्तारित करने के विरुद्ध उपधारणा--यह एक दृढ़ उपधारणा है कि, जब तक कोई कानून स्पष्टतः ऐसा न कहे कि किसी कानून का निर्वचन इस प्रकार नहीं किया जाना चाहिए जिससे न्यायालयों की अधिकारिता ही समाप्त हो जाय। इस उपधारणा का आधार यह है कि, विधि की स्थिति के सम्बन्ध में यथापूर्व स्थिति बनायी रखी जानी चाहिए तथा प्रत्येक व्यक्ति को न्याय प्राप्त करने के लिए न्यायालय के दरवाजे खुले रहने चाहिए। जब तक किसी कानून की भाषा स्पष्टतः न हो, ऐसा मान लिया जायेगा कि न ही न्यायालय की नयी अधिकारिता ही सृष्टि की जाती है और न ही वर्तमान अधिकारिता विस्तारित की जाती है। यह उपधारणा कि चूँकि सामान्यतया विधायिका का आशय न्याय को नागरिक की पहुँच से दूर रखने का नहीं होता है, इसलिए न्यायालय की अधिकारिता तब तक बनी रहती है, जब तक स्पष्ट भाषा द्वारा या विवक्षित तौर पर विधायिका ने न्यायालय को अधिकारिता से वंचित न कर दिया हो। किसी न्यायालय को यह अधिकारिता प्राप्त हो अथवा नहीं तो भी वह किसी कानून के सम्बन्ध में इस बात की जाँच कर सकता है कि क्या किसी कानून के उपबन्ध की अनुपालना की गयी है अथवा या कानूनी अधिकरण ने विधि के अन्तर्गत निर्दिष्ट प्रक्रिया का अनुगमन किया है। विधि यह भी उपधारणा करती है कि साधारण दीवानी न्यायालयों में उपचार सदा ही नागरिक को प्राप्त है जब तक कि इसके विपरीत आशय असंदिग्ध रूप में न उल्लिखित न हो।

गुजरात राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक लिमिटेड बनाम पी. आर. मनकड़, A.I.R. 1979, S.C. 1203 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया कि, किसी सहकारी समिति के कर्मचारी द्वारा अपनी नौकरी से पदच्युत किये जाने के विरुद्ध इस आधार पर उठाया गया विवाद कि यह उत्पीड़न का कार्य था और इसलिए उसे पिछली देय राशि देते हुए वापस काम पर बहाल किया जाय, एक 'ऐसा विवाद' नहीं है, जिसे सहकारी समिति के रजिस्ट्रार द्वारा सुलझाया जा सके और न ही यह 'ऐसा विवाद' है, जो गुजरात सहकारी समितियाँ अधिनियम, 1961 की धारा 96 अथवा बम्बई सहकारी समितियाँ अधिनियम, 1925 की धारा 24 के अन्तर्गत समिति के कारबार से सम्बन्धित है । अतः इस वाद का निपटारा श्रम-न्यायालय ही कर सकता है। नौकरी से पदच्युत किये गये नौकर के द्वारा समिति के विरुद्ध उठाया गया विवाद जिसमें पिछली देय वेतन की धनराशि के साथ नौकरी पर वापस बहाल किये जाने आदि की माँग की गयी हो, और जो सिविल न्यायालय में प्रवर्तनीय न हो, धारा 96 (1) में प्रयोग की गयी अभिव्यक्ति "समिति के प्रबन्ध से सम्बन्धित" की परिधि से बाहर है। ऐसा विवाद बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम, 1947 के अन्तर्गत श्रम न्यायालय की अधिकारिता के अन्तर्गत है ।

PGS NATIONAL COLLEGE OF LAW